

भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा



भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :

पुष्पा शर्मा

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,

लोहाखान, अजमेर-305001

ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

मो. 9660111549

संस्करण

प्रथम 2026

ISBN : 978-81-993854-1-2

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान प्रणाली-उद्गम और विकास

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

आवरण - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक

श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

योग का सिद्धान्त और क्रियात्मक दृष्टि

राहुल कुमार

शारीरिक शिक्षक

हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

योग भारतीय दर्शन की एक अत्यन्त गम्भीर, सूक्ष्म तथा साधनापरक परम्परा है, जिसका उद्देश्य केवल शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य नहीं, अपितु जीवात्मा को उसके परम लक्ष्य—ईश्वर साक्षात्कार—की ओर अग्रसर करना है। भगवान् पतञ्जलि, उनके भाष्यकार भगवान् व्यास तथा विवरणकार भगवान् शङ्कराचार्य, तीनों ने योग का मूल अर्थ 'समाधि' ही स्वीकार किया है। उनके अनुसार योग कोई बाह्य कर्मकाण्ड मात्र नहीं, बल्कि चित्त की वृत्तियों का क्रमशः शोधन, संयमन और अन्ततः पूर्ण निरोध है।

पतञ्जलि योगसूत्र के आरम्भ में ही योग को परिभाषित करते हुए कहते हैं— 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'। व्यासभाष्य में इसे संक्षेप में 'योगः समाधिः' कहा गया है और शङ्कराचार्य ने इसे 'योगः समाधानम्' के रूप में स्पष्ट किया है। इन तीनों कथनों का आशय यह है कि योग का वास्तविक स्वरूप चित्त की चंचलता को शान्त कर उसे एक बिन्दु पर स्थिर करना है, जिससे आत्मा अपने स्वाभाविक, शुद्ध और द्रष्टा स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सके।

योगसूत्र (1.20) में श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा का जो क्रम दिया गया है, वह योग-साधना की मनोवैज्ञानिक तथा व्यावहारिक प्रक्रिया को दर्शाता है। पहले साधक में श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसी से साधना में उत्साह और पुरुषार्थ (वीर्य) आता है। निरन्तर अभ्यास से स्मृति स्थिर होती है, स्मृति के स्थिर होने पर चित्त समाधि की ओर अग्रसर होता है और समाधि से प्रज्ञा—अर्थात् यथार्थ ज्ञान—का उदय होता है। यह क्रम दर्शाता है कि योग केवल तात्त्विक विचार नहीं, बल्कि सुनियोजित आन्तरिक अनुशासन है।

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के नवम समुल्लास में योग की व्याख्या को और अधिक व्यावहारिक तथा नैतिक आधार प्रदान किया है। उनके अनुसार योग का अर्थ है—रजोगुण और तमोगुण से युक्त कर्मों का परित्याग कर मन को शुद्ध

सत्त्वगुण में स्थिर करना, और फिर उस सत्त्वगुण का भी निरोध कर चित्त को एकाग्र तथा निरुद्ध अवस्था में पहुँचा देना। जब चित्त इस प्रकार पूर्णतः एकाग्र और निरुद्ध हो जाता है, तब जीवात्मा सबके द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में स्थित होती है। इस प्रकार योग आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध की प्रत्यक्ष अनुभूति का साधन बन जाता है।

इस सूत्रार्थ में सम्पूर्ण योग-दर्शन निहित है। सर्वप्रथम साधक को रजोगुण और तमोगुण से उत्पन्न अशान्त, विषयासक्त और अधर्मयुक्त प्रवृत्तियों का त्याग करना होता है। इसके बाद उसे विशुद्ध सत्त्वगुण में स्थित होना होता है, जो शान्ति, विवेक और प्रकाश का गुण है। जब सत्त्वगुण में दृढ़ता आ जाती है, तब उससे भी वैराग्य उत्पन्न होता है, क्योंकि सत्त्व भी अन्ततः प्रकृति का ही एक गुण है। योगसूत्र 1.16 में वर्णित परवैराग्य इसी अवस्था को प्रकट करता है, जहाँ साधक दृश्य और श्रव्य विषयों के दोषों को देखकर उनसे सर्वथा विरक्त हो जाता है।

इस क्रमिक शोधन के फलस्वरूप चित्त एकाग्र होने लगता है। तब वह या तो परमात्मा के ज्ञानस्वरूप में, या गुणी द्रव्यों के सूक्ष्म ज्ञानांश में स्थिर होता है। आगे चलकर साधक मन की पाँचों प्रकार की वृत्तियों—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति—का निरोध करता है। जब यह निरोध पूर्ण हो जाता है, तब चित्त सर्वथा निरुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है।

योगसूत्र (1.18) में इस अवस्था को असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि कहा गया है— ‘विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः’। अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधियों से भी वैराग्य हो जाने पर केवल उनके संस्कार मात्र शेष रहते हैं और चित्त निरालम्बन होकर मानो अभाव को प्राप्त हो जाता है। यही निर्बीज समाधि है। इस अवस्था की साधना का एकमात्र उपाय वैराग्य है। भगवान् व्यास और शङ्कराचार्य दोनों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि बिना गहन वैराग्य के निर्बीज समाधि सम्भव नहीं।

इस प्रकार योग का दर्शन केवल तत्त्वचिन्तन नहीं, बल्कि जीवन की सम्पूर्ण साधना-पद्धति है। यह मनुष्य को कर्म, गुण और प्रकृति के बन्धनों से ऊपर उठाकर आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित करने का वैज्ञानिक और अनुभूतिपरक मार्ग प्रस्तुत करता है।

चित्तवृत्तियों के क्षय और प्रत्यक्ष साक्षात्कार का दर्शन :

योगसूत्र और व्यास-शङ्कराचार्य के भाष्यों के अनुसार, साधना का उद्देश्य चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध करके आत्मा की चेतना को जागृत करना है। यहाँ ‘वृत्तियाँ’ वे मानसिक प्रक्रियाएँ हैं जो हमारे अनुभव और ज्ञान को प्रभावित करती हैं—जैसे प्रत्यक्ष (दृष्टि, श्रवण), अनुमान, आगम (शास्त्रीय प्रमाण), मिथ्या ज्ञान, विकल्प (विवेक या तर्क), निद्रा और स्मृति।

(1) **वृत्तियों का निरोध :-** जब साधक की चित्तवृत्तियाँ सभी प्रकार की मानसिक गतिविधियाँ—क्षीण या शान्त हो जाती हैं, तब चित्त अपने प्राकृतिक, अव्यक्त और निर्विवाद स्वरूप में स्थिर हो जाता है। यह अवस्था किसी प्रकार के बाहरी साधनों या संवेदनाओं पर निर्भर नहीं होती। साधक का मन जड़ नहीं, बल्कि पूरी तरह से सचेत और सशक्त हो जाता है।

(2) **प्रत्यक्ष और अन्य प्रमाणों का त्याग :-** साधक उस अवस्था में पहुँचता है जहाँ प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम से ज्ञात होने वाली सभी वृत्तियों का परित्याग स्वतः हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि साधक बाहरी प्रमाणों पर निर्भर नहीं करता, क्योंकि उसकी चेतना स्वयं ही वस्तुओं और सत्य का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर रही होती है।

(3) **मिथ्या ज्ञान और विकल्प का अंत :-** साधक मिथ्या ज्ञान (विपर्यय) और अतद्रूपप्रतिष्ठ से मुक्त हो जाता है। अतद्रूपप्रतिष्ठ से अभिप्राय है किसी वस्तु का वास्तविक स्वरूप के विपरीत दृढ़ मान लेना। इसके साथ ही शब्दज्ञान और वस्तुशून्य विकल्प (अनुमान आधारित या तर्कात्मक ज्ञान) भी त्याग दिए जाते हैं। यह अवस्था मानसिक भ्रम और जटिलताओं के पूर्ण अंत का सूचक है।

(4) **निद्रा और स्मृति का परित्याग :-** साधक निद्रा या मानसिक थकान तथा स्मृति के प्रभाव से भी मुक्त होता है। अब उसकी चेतना पूर्णतः जाग्रत और निरंतर सचेत रहती है। यह शुद्ध चित्त की अवस्था है, जहाँ मन की किसी भी बाहरी या आंतरिक बाधा का प्रभाव नहीं रह जाता।

(5) **आत्मा की जाग्रत चेतना :-** इस अवस्था में साधक की अपनी चेतना जागृत होती है। यह चेतना न केवल स्वयं के अस्तित्व का अनुभव करती है, बल्कि उसे अपने और परमात्मा के बीच का सम्बन्ध भी प्रत्यक्ष रूप में ज्ञात होता है। साधक को अब आत्मा, परमात्मा, मन, बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियाँ, पांचों भूत और तीनों गुण (सत्त्व, रजस्, तम) सभी तन्मात्र रूप में स्पष्ट दिखाई देते हैं।

(6) **सब वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान :-** जब चित्त समाहित हो जाता है, योगी की प्रज्ञा प्रकाशमान हो जाती है। साधक किसी भी वस्तु, व्यक्ति, समय या स्थान की बाधा से प्रभावित नहीं होता। वह प्रत्येक वस्तु को उसकी वास्तविकता और स्वरूप में जान लेता है। चाहे वह वस्तु वर्तमान, अतीत या भविष्य में हो; चाहे वह इस शरीर या अन्य शरीर में हो; चाहे वह इस लोक में हो या किसी अन्य लोक में—सभी का साक्षात्कार उसके लिए सटीक और निर्विकल्प होता है।

(7) **संयम और समाधि का महत्व :-** यह प्रत्यक्ष अनुभव केवल संयम

(योग) के माध्यम से प्राप्त होता है। संयम का अर्थ है एक ही विषय पर पूर्ण ध्यान, धारणा, ध्यान और समाधि का क्रमिक अभ्यास। जब साधक पूरी तरह एक विषय में समाधि हो जाता है, तब उसकी प्रज्ञा स्वतः ही यथार्थ रूप में प्रकट हो जाती है।

(8) व्यावहारिक दृष्टान्त :- दृष्टान्त (आँख का अभ्यास और चश्मा) से समझा जा सकता है कि जब साधक अपने असली स्वरूप और आत्मा की चेतना को पहचान लेता है, तब बाहरी साधनों (जैसे आँखें या चश्मा) की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। जैसे आँख अभ्यास के बाद निर्भरता छोड़ देती है, वैसे ही साधक का मन और चित्त अपने स्वरूप का बोध कर पूर्ण स्वतंत्र और मुक्त हो जाता है।

योग के अतिरिक्त अनुभव और क्रियात्मक दृष्टिकोण :

योग केवल आत्मज्ञान या समाधि तक सीमित नहीं है। जब साधक का चित्त पूर्णतः समाहित और निरुद्ध हो जाता है, तो उसके अनुभव और सामर्थ्य अनेक प्रकार से विकसित होते हैं। यह अनुभव केवल मानसिक या आध्यात्मिक ही नहीं, बल्कि शरीर, इन्द्रियाँ, प्रकृति और परमाणु स्तर तक फैलते हैं।

(1) सर्वज्ञान और प्रज्ञा का उदय :- समाहित चित्त का साधक सभी वस्तुओं, जीवों और घटनाओं को यथार्थ रूप में जानने लगता है। उसे न केवल प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम द्वारा ज्ञात होने वाले तत्व स्पष्ट दिखाई देते हैं, बल्कि मिथ्या ज्ञान और भ्रम का पूर्ण अंत होता है। साधक अब वस्तुओं के स्वरूप, गुण, स्थिति और उनके अन्तर्संबंधों को भी निर्विकल्प रूप में देख सकता है।

(2) सिद्धियाँ और सामर्थ्य :- योगी में अनेक प्रकार की अद्भुत शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। ये साधक की चेतन शक्ति और समाहित चित्त से स्वतः विकसित होती हैं:

कायसंपत्त :- अपने शरीर पर असीम नियंत्रण। साधक छोटे से बड़े कार्य करने में स्वतंत्र हो जाता है।

भूतजय :- पदार्थों और तत्वों पर विजय। वह प्राकृतिक तत्वों को अपने उद्देश्य के अनुसार निर्देशित कर सकता है।

इन्द्रियजय :- इन्द्रियों पर नियंत्रण। साधक अपने इन्द्रियों का पूर्ण नियंत्रण कर सकता है, चाहे वे देखने, सुनने, छूने, स्वाद या गंध संबंधी हों।

प्रधान-प्रकृति पर जय :- प्रकृति के सूक्ष्म और स्थूल तत्वों पर नियंत्रण। जैसे परमाणु, जल, आग, ध्वनि आदि उसकी चेतना के अधीन हो जाते हैं।

इन सिद्धियों से योगी वास्तविक रूप में सर्वज्ञ और अधिष्ठाता बन जाता है। उसे सभी पदार्थों और घटनाओं का ज्ञान और नियंत्रण प्राप्त हो जाता है।

(3) ब्रह्मवित् का अनुभव :- योगी जब ब्रह्म को जानता है, तो वह ब्रह्मवत् हो जाता है। यह भेद केवल इतना रहता है कि समर्थ योगी एकदेशी ज्ञाता और अधिष्ठाता होता है, जबकि परमात्मा सर्वदेशी, सर्वज्ञ और सर्वाधिष्ठाता है। यही साधना का परात्पर लक्ष्य है—अपने स्वरूप और परमात्मा के बीच की पूर्ण जागृति और ज्ञान।

(4) क्रियात्मक दृष्टिकोण :- योग केवल तात्त्विक ज्ञान नहीं, बल्कि अभ्यास और क्रियात्मक नियंत्रण का मार्ग है। शरीर जड़ और अचेतन है; केवल आत्मा की चेतना इसे गति देती है। जैसे एक मृत शरीर को उठाने या ले जाने में कई लोग चाहिए, पर साधक अपनी चेतना से सूक्ष्म परमाणुओं को नियंत्रित कर कार्य कर सकता है।

उदाहरण:

- * हाथ का छोटा सा अंग कितने परमाणुओं से बना है, और साधक अपनी चेतना से उन परमाणुओं को नियंत्रित कर हाथ, पैर या पूरे शरीर का संचालन करता है।
- * यदि हाथी या बड़े जीव के शरीर में चेतन शक्ति प्रविष्ट हो जाए, तो वह आसानी से अपने शरीर के अंगों को नियंत्रित कर सकता है।
- * साधक अभ्यास से जड़ तत्वों (जैसे जल, धातु, अग्नि) को भी अपनी इच्छा अनुसार नियंत्रित कर सकता है।

(5) प्रयोगात्मक दृष्टान्त :- हिप्नोटिज्म (मोहिनी विद्या) का उदाहरण दिया गया है। किसी जीव को सम्मोहित करके साधक उसकी इच्छाओं और ज्ञान को नियंत्रित कर सकता है। परन्तु यह तभी संभव होता है जब साधक का चित्त पूर्ण समाहित और सत्त्व प्रधान हो। यदि चित्त तमोगुणयुक्त या अशुद्ध हो, तो उत्तर अधूरा या असत्य होगा।

(6) चेतना का परिष्कार :- साधक अपने चित्त की समाहित अवस्था में रजोगुण और तमोगुण से मुक्त हो जाता है। मन की सभी मैल और बाधाएँ दूर हो जाती हैं। साधक का मन शुद्ध सत्त्वगुण में स्थित होता है। इसी से 'ऋतंभरा प्रज्ञा' वास्तविक, शुद्ध और निर्विकल्प ज्ञान—प्राप्त होती है।

(7) सर्व-वस्तुओं पर नियंत्रण :- योगी जब चेतन शक्ति में पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है, तो जड़ प्रकृति भी उसके अधीन आ जाती है। वह अपनी इच्छा और ज्ञान के अनुसार प्राकृतिक घटनाओं, पदार्थों और सूक्ष्म ऊर्जा को नियंत्रित कर सकता है।

(8) अभ्यास और वैराग्य का महत्व :- यह सम्पूर्ण साधना वैराग्य, अनुशासन

और समय आधारित है। केवल शास्त्रज्ञान या श्रद्धा के आधार पर इसे अनुभव नहीं किया जा सकता। अभ्यास से ही चित्त क्षीण वृत्तियों और समाहित चेतना की स्थिति प्राप्त होती है, जिससे योग का वास्तविक लाभ—सर्वज्ञ प्रज्ञा और सिद्धियाँ—मिलती हैं।

योग की सिद्धियाँ साधना और अभ्यास की परिपूर्णता का परिणाम हैं। ये किसी जादू-टोने या धोखे की तरह नहीं, बल्कि योग और चित्त समाहित अवस्था से उत्पन्न प्राकृतिक प्रभाव हैं। पतञ्जलि, व्यास, शङ्कराचार्य और ऋषि दयानन्द ने इन सिद्धियों का समर्थन किया है। योग की सिद्धियाँ मुख्यतः पाँच प्रकार से प्राप्त होती हैं।

(1) जन्म से प्राप्त सिद्धियाँ :- कुछ गुण और सामर्थ्य व्यक्ति के जन्म से ही मिल जाते हैं। उदाहरण स्वरूप जन्म से ही धन, वैभव और शक्ति होना, पक्षियों की तरह आकाश में उड़ने की क्षमता, कुत्तों की तरह तैरना, या हाथी और सिंह जैसे जीवों में जन्मजात बल और वीरता होना। ये जन्मसिद्ध गुण साधक के स्वभाव और शरीर में अंतर्निहित होते हैं।

(2) औषधियों से प्राप्त सिद्धियाँ :- प्राचीन योग शास्त्रों में कुछ जड़ी-बूटियों और औषधियों का विशेष महत्व है। जैसे सोमलता, आमलक आदि के प्रयोग से साधक अपने शरीर और मन को दीर्घायु, स्वस्थ और शक्तिशाली बना सकता है। इसका उद्देश्य केवल आयु बढ़ाना नहीं, बल्कि योग अभ्यास में स्थिरता, मानसिक एकाग्रता और शक्ति का विकास भी है।

(3) मंत्र-जाप से उत्पन्न सिद्धियाँ :- मंत्र-जाप साधक के चित्त और चेतना पर गहरा प्रभाव डालता है। साधक का मनोबल इतना बढ़ जाता है कि पृथ्वी का गुरुत्व, पतंग, पक्षियों की गति जैसी बाधाएँ उसे रोक नहीं पाती। साधक आकाश में गमन जैसी असाधारण क्रियाएँ करने में सक्षम हो जाता है। मंत्र-जाप से साधक के शरीर में तमोगुण कम और सत्त्वगुण की वृद्धि होती है, जिससे उसका मनोबल और चेतना प्रबल हो जाती है।

(4) तप या कठिन साधना से प्राप्त सिद्धियाँ :- तपस्या और साधना साधक के मनोबल और शक्ति को बढ़ाती हैं। साधक हाथी, शेर या अन्य बड़े जीवों को अपने आदेश से नियंत्रित कर सकता है। साधना के माध्यम से इच्छानुसार कार्यों का संपादन संभव होता है। यह केवल बाहरी शक्ति नहीं, बल्कि आत्मा और चेतना की शक्ति का विकास है।

(5) समाधि से प्राप्त सिद्धियाँ :- जब साधक का चित्त पूर्ण समाहित और निरुद्ध हो जाता है, तब साधक का मन, शरीर और इन्द्रियाँ सभी उसके आदेश का पालन करने लगती हैं। वह प्रकृति के तत्वों—जल, अग्नि, हवा, पृथ्वी, परमाणु को

अपनी चेतना से नियंत्रित कर सकता है। समाधि से साधक में ऋतंभरा प्रज्ञा का उदय होता है, जिसमें सभी वस्तुएँ, जीव और परमात्मा निर्विकल्प और यथार्थ रूप में प्रत्यक्ष ज्ञात होते हैं। यह जन्म, औषधि, मंत्र या तप से प्राप्त अन्य सिद्धियों से भिन्न है।

योग की सिद्धियों का वास्तविक महत्व केवल शक्ति या वैराग्य प्राप्त करना नहीं है। ये साधक के अभ्यास, अनुशासन और चेतना के विकास का परिणाम हैं। अभ्यास और अनुभव के माध्यम से ही ये प्राप्त होती हैं; केवल शास्त्रज्ञान या श्रद्धा पर भरोसा करके नहीं। इन सिद्धियों के माध्यम से साधक शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सामर्थ्य प्राप्त करता है। समाधि की अवस्था में साधक सर्वज्ञ, सर्वाधिष्ठाता और आत्मा-परमात्मा का प्रत्यक्ष ज्ञाता बन जाता है।

समाधि से प्राप्त योग की सिद्धियाँ पाँच प्रकार की होती हैं। इनमें से प्रत्येक सिद्धि साधक के चित्त, अभ्यास और चेतना के परिष्कार के अनुसार उत्पन्न होती है।

(1) ध्यान से प्राप्त :- इनसे साधक को आत्मा और परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त होता है। वह प्रकृति और उसके विकारों का ज्ञान करता है। देशान्तर, देहान्तर और कालान्तर का विवेक प्राप्त होता है। साधक मुक्ति की अवस्था तक पहुँचता है। ध्यान से प्राप्त सिद्धियों में कोई विप्रति साधक या ऋषि भक्त के साथ नहीं होती। ऋषियों ने अपने अनुभवों के आधार पर योग और ध्यान की प्रक्रिया का वर्णन किया। उनका लेखन परोपकार और ज्ञान बांटने की भावना से प्रेरित था, जिसमें कोई स्वार्थ नहीं था। साधना और अनुभव से ही विश्वास दृढ़ होता है, न कि केवल शब्द या विश्वास पर।

(2) योगाङ्गों से प्राप्त :- योग के अंगों—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—के अभ्यास से साधक आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का विवेकपूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है। जंतुओं का स्वाभाविक विरोध भी अहिंसा और साधना के वातावरण में दूर हो जाता है। साधक के आचार और वाणी स्थिर हो जाती है। आसन और प्राण का स्थिर होना चित्त की शांति लाता है। इससे तमोगुण और रजोगुण दूर होकर सत्त्वगुण प्रकट होता है। इन्द्रियाँ केवल मन की इच्छा अनुसार कार्य करती हैं। धारणा, ध्यान और समाधि सिद्ध होने लगती हैं। संयम सिद्ध होने पर बिना प्रयास समाधि लगने लगती है और सभी ज्ञान स्वतः प्रकट होने लगता है।

(3) संयम से प्राप्त :- संयम साधक को भूत और भविष्यत् का ज्ञान देता है। वह प्राणियों की भाषा और भावनाओं को जान सकता है। पूर्व जन्म और कर्म का ज्ञान होता है। साधक दूसरे चित्तों की गतिविधियों को जान सकता है। संयम से साधक

को अंतरधान, आकाश में गमन, न दिखाई देना, पाँचों भूतों का नियंत्रित उपयोग, मनोजवित्व और देह के बिना भी ज्ञान लेने की क्षमता प्राप्त होती है। संयम से साधक सर्वज्ञ हो जाता है और समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। संयम सिद्ध होने पर इन सभी क्षमताओं का अनुभव होता है।

(4) प्रकृतिजय से प्राप्त :- साधक जब प्रकृति के तत्वों—भूत, अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर लेता है, तब वह उनके माध्यम से परमात्मा की तरह कार्य कर सकता है। उसका अधिकार केवल एक देशी नहीं, बल्कि व्यापक कार्यों तक पहुँचता है। साधक अपने सामर्थ्य से प्रकृति में कई कार्य संपन्न कर सकता है।

(5) वैराग्य से प्राप्त :- जब साधक में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, तब उसके भीतर आवेग और संलग्नता समाप्त हो जाती है। प्रकृति के प्रति अनुराग खत्म होने पर अविद्या, मोह, क्रोध, लोभ और पाँचों क्लेश निवृत्त हो जाते हैं। साधक पूर्ण विवेक और मुक्ति की स्थिति में पहुँचता है। यह अवस्था जीवन और मोक्ष दोनों में लाभकारी होती है।

योग सिद्धियों का वास्तविक महत्व केवल सामर्थ्य प्राप्त करना नहीं है। ये साधक के अभ्यास, अनुशासन और चेतना के परिष्कार का परिणाम हैं। यदि कोई सिद्धि सीधे अनुभव में न आये, तब भी योग की प्रक्रिया, अभ्यास और साधना पर विश्वास बनाए रखना आवश्यक है। एक अंश के प्रत्यक्ष अनुभव से ही साधक को सभी सूक्ष्म विषयों में विश्वास और श्रद्धा उत्पन्न होती है।

निष्कर्षतः योग का उद्देश्य चित्त को समाहित और निरुद्ध करना है, जिससे साधक आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करता है। रजोगुण और तमोगुणयुक्त कर्मों को त्यागकर सत्त्वगुण में स्थिर रहना आवश्यक है। योग से जन्म, औषधि, मंत्र, तप और समाधि के माध्यम से सिद्धियाँ मिलती हैं। समाधि सिद्धियाँ ध्यान, योगाङ्ग, संयम, प्रकृतिजय और वैराग्य से होती हैं। इससे भूत, भविष्यत्, पूर्व जन्म, देहहीन ज्ञान, आकाशगमन और सर्वज्ञता प्राप्त होती है। वैराग्य से समस्त क्लेश निवृत्त होकर पूर्ण विवेक और मुक्ति संभव होती है। योग साधक को चेतना, अभ्यास और वैराग्य से आत्मज्ञान, समाधि और मुक्ति तक पहुँचाता है।

☆☆☆